नव विमर्श
नव चिन्तन

डॉ. नीता दौलतकर
डॉ. राजेन्द्र पोवार

2018

ISBN : 978-93-83144-36-5

पुस्तक	:	**नव विमर्श : नव चिन्तन**
संपादक	:	डॉ. नीता दौलतकर, डॉ. राजेन्द्र पोवार
©	:	संपादक
प्रकाशक	:	**शुभम् पब्लिकेशन** 3ए-128, प्रथम तल, हंसपुरम्, कानपुर-208021 (उ.प्र.) सम्पर्क : 09452971407, 09792402100 Email - shubhampublicationsknp@gmail.com website : www.shubhampublications.com
संस्करण	:	**प्रथम, 2018**
शब्द-सज्जा	:	रुद्र ग्राफिक्स, कानपुर
मूल्य	:	295.00
मुद्रण	:	जी.के. फाइन आर्ट्स, नई दिल्ली

Nav Vimarsh : Nav Chintan
Editor : *Dr. Neeta Daulatkar, Dr. Rajendra Powar*
Price : Two Hundred Ninty Five Only.

अनुक्रम

1.	हिन्दी काव्य में स्त्री-विमर्श **प्रो. एस. के. पवार**	11
2.	समकालीन साहित्य में पुराण की प्रस्तुति **डॉ. नीता दौलतकर**	16
3.	निर्मला पुत्तुल की कविताओं में उभरता स्त्री विमर्श **डॉ. राजेन्द्र पोवार**	20
4.	अनीता भारती की कविता में स्त्री का सशक्त स्वर **प्रो. विजय पाटिल**	24
5.	नई सदी के हिन्दी काव्य में विषयों की विविधता **प्रा. विश्वनाथ मुजावर**	30
6.	हृदयेश लिखित 'चार दरवेश' उपन्यास में चित्रित वृद्ध-विमर्श **प्रो. श्रीमती पी.व्ही. गाडवी**	35
7.	वर्तिका नंदा की कविताओं में सामाजिक एवं राजकीय संदर्भ **मनिषा नाड़गौडा**	39
8.	'गिलिगडु' में वृद्ध विमर्श **डॉ. सपना सावईकर**	43
9.	समकालीन उपन्यास में स्त्री-विमर्श **डॉ. सपना सावईकर**	51
10.	कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा में चित्रित स्त्री का मनोवैज्ञानिक यथार्थ **निशा मुरलीधरन**	57
11.	शरद सिंह की कहानियों में स्त्री का संघर्षमय जीवन **डॉ. ममता शिरगम्बी**	61
12.	मधुकर सिंह का कथा साहित्य : नारी शोषण का यथार्थ चित्रण **प्रीति माहेश्वरी**	64

3

निर्मला पुत्तुल की कविताओं में उभरता स्त्री विमर्श

डॉ. राजेन्द्र पोवार

आदिवासी साहित्य में आदिवासियों के जीवन और उनके समाज का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है। ''आदिवासी साहित्य पूरे विश्व में मिलता है। यूरोप और अमेरिका में इसे नेटिव अमेरिकन लिटरेचर, कलर्ड लिटरेचर, स्लेव लिटरेचर और अफ्रिकन-अमेरिकन लिटरेचर, अफ्रिकन देशों में ब्लैक लिटरेचर, तो अंग्रेजी में इंडिजिनस लिटरेचर, फर्स्टपीपुल लिटरेचर और ट्राइबल लिटरेचर कहते हैं। भारत में हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में सामान्यत: 'आदिवासी साहित्य' भी कहा जाता है।''[1]

आदिवासी लेखकों ने, कवियों ने आदिवासी साहित्य की जैसी निर्मिती की है, वैसे ही गैर आदिवासी लेखकों ने भी इन पर साहित्य रचना की है। भारत में आदिवासी साहित्य का प्रारम्भ बीसवी सदी के शुरुवाती दौर में हुआ। हिन्दी, मराठी, बांगला, ओडिया, असमी आदि अनेक भारतीय भाषाओं में यह लिखा जाता है। इनके अलावा आदिवासियों की अपनी भाषाओं में जैसे संथाली, मुंडारी आदि में भी इनकी रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

भारत में प्रमुख रूप में महादेव टोप्पो, हरिराम मीणा, निर्मला पुत्तुल, रमणिका गुप्ता, सुशीला सामद, राम दयाल मुंडा, वंदना टेटे, रोज केरकेट्टा, रघुनाथ मुर्मू, संजीव, राकेश कुमार सिंह, महुआ माजी, बजरंग तिवारी, गणेश देवी आईवी, हांसदा आदि आदिवासी तथा गैर आदिवासी कवि लेखक हैं।

भूमंडलीकरण के इस दौर में जल, जंगल, जमीन से दूर किए जा रहे अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा करने वाले आदिवासियों का चित्रण आदिवासी विमर्श में प्राप्त होता है। वे लोग जंगलों को, पर्यावरण को बचाना चाहते हैं, किन्तु भूमंडलीकरण के बाशिंदे वे सब चीजें उनसे छीनना चाहते हैं जो उनकी अपनी मातृभूमि, परम्परा, संस्कृति है, धरोहर है, पहचान है। वे उस धरती का शोषण कर रहे हैं। इसलिए ग्रेस कुजूर अपनी कविता में कहती हैं-

''यह प्रकृति
एक दिन
मांगेगी
अपनी तरुणाई का एक-एक क्षण
और करेगी
बगावत''

धरीत्री की तरह स्त्री का शोषण हर समाज में होता आया है। आदिवासी समाज इससे अछूता नहीं है। जी-जान से मेहनत कर अपना घर चलानेवाली आदिवासी स्त्री भी अपना हक नहीं माँग सकती। क्योंकि इस पुरुष प्रधान संस्कृति में हक के हकदार केवल पुरुष ही समझे जाते हैं। इसलिए निर्मला पुत्तुल अपनी एक कविता में कहती हैं-

''हक की बात न करो मेरी बहन
मत माँगो पिता की संपत्ति पर अधिकार
जिक्र मत करो पत्थरों और जंगलों की अवैध कटाई का
सूदखोरों और ग्रामीण डॉक्टरों के लूट की चर्चा न करो
बहन
भरी पंचायत में डायन करार कर दण्डित की जाओगी।''[12]

आदिवासी स्त्री जंगल में मिले पेड़, पत्तों से अनेक चीजें बनाती है। उनसे पत्तलें, सूप, झाड़ू, पंखा, चटाइयाँ बनाकर उन्हें बेच कर अपना चरितार्थ चलाती है। उसके लिए तपती धूप में जंगल में घूम-घूम कर, पसीने से लथपथ होती हुई चीजें इकट्ठा करती है। फ़िर भी उसे पेट भर खाना नहीं मिलता। उसकी भूख, गरीबी तथा आर्थिक विवशता का चित्रण निर्मला जी अपनी 'बाहामुनी' कविता में करते हुए कहती हैं-

''तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते हैं पेट हजारों
पर हजारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट
कैसी विडम्बना है कि
ज़मीन पर बैठ बुनती हो चटाइयाँ
और पंखा बनाते टपकता है
तुम्हारे करियारे देह से टप...टप... पसीना।''[13]

जो लोग उनकी चीजों को खरीदकर उसे दूगने-चौगुने दाम पर बेच कर अमीर हो जाते हैं उनकी गंदी नज़र आदिवासी स्त्रियों पर रहती है। वे उन्हें

सपने दिखाते हैं, उनके नृत्य की, आँखों की, सौंदर्य की प्रशंसा करते हैं और उन्हें कलकत्ता, नेपाल के बाज़ारों में ले जाकर बेचते हैं, उन्हें वेश्या-व्यवसाय करने पर मजबूर कर देते हैं। इसलिए कवयित्री अपनी बेटियों को सजग, सतर्क करते हुए लिखती हैं-

''सौदागर हैं वे... समझो...
पहचानों उन्हें बिटिया मुर्मू... पहचानों
पहाड़ों पर आग वे ही लगाते हैं
उन्हीं की दुकानों पर तुम्हारे बच्चों का
बचपन चीत्कारता है
उन्हीं की गाड़ियों पर
तुम्हारी लड़कियाँ सब्जबाग देखने
कलकत्ता और नेपाल के बाज़ारों में उतरती हैं।''[14]

ये स्त्रियाँ शोषण का शिकार हैं। किन्तु जब कोई उनके निश्छल हँसी की, नृत्य की तारीफ़ करते हुए-'जब वे गीत गाती हैं तो अपनी जिंदगी के दर्द को भूल जाती हैं, अपने शुभ्र दाँतों की तरह वे शांत होती हैं, जब वे नाचती हैं तब असमय की वसन्त आ जाता है' ऐसा कहता है, वह कितना झूठ बोलता है। ये स्त्रियाँ तो हमेशा दु:ख-दर्दों को झेलती हुई, शोषण का शिकार बनती रहती हैं, आर्थिक विषमता से, गरीबी से ग्रस्त रहती हैं। इस तरह उनके बारे में इतनी चिकनी-चुपड़ी बातें कहनेवाले के बारे में वे लिखती हैं-

''किसने कहे हैं उनके परिचय में
इतने बड़े-बड़े झूठ?
किसने?
निश्चय ही वह हमारी जमात का
खाया-पीया आदमी होगा...
सच्चाई को धुन्य में लपेटता
एक निर्लज्ज सौदागर
जरूर वह शब्दों से धोखा करता हुआ
कोई कवि होगा
मस्तिष्क से अपाहिज।''[15]

कवयित्री अपनी 'बिटिया मुर्मू के लिए-1' इस कविता में अपनी बेटी को इन सारी साजिशों के खिलाफ़ लड़ने के लिए प्रेरित, जागृत करते हुए पर्यावरण को बचाने के लिए कहती हैं-

"उठो, कि तुम जहाँ हो वहाँ से उठो
जैसे तुफ़ान से बवण्डर उठता है
उठती है जैसे राख में दबी चिनगारी
देखो! अपनी बस्ती के सीमान्त पर
जहाँ धराशाई हो रहे हैं पेड
कुल्हाडियों के सामने असहाय
रोज नंगी होती बस्तियाँ
एक रोज माँगेगी तुमसे
तुम्हारी खामोशी का जवाब।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि निर्मला पुत्तुल की कविताओं में स्त्री जीवन के विविध स्तर दिखाई देते हैं। वह कर्म-प्रधान स्त्री है किन्तु अपने अधिकारों से, हकों से वंचित है। वह अपने ही लोगों से प्रताड़ित हो रही है, फँसाई जा रही है, बेची जा रही है। किन्तु इन सबके बावजूद उसमें इन सब से टक्कर लेने का जागृत स्वर भी दिखाई देता है।

संदर्भ

1. https://hi.m.wikipedia.org
2. निर्मला पुत्तुल-नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ. 24
3. निर्मला पुत्तुल-नगाडे की तरह बजते शब्द, पृ. 12
4. वही-kavitakosha.org
5. वही, 'आदिवासी लडकियों के बारे मे' कविता से

♦ ♦ ♦